वेद प्रकाश

हमारे मासिक पत्र 'वेद प्रकाश' के ग्राहक बनकर
औरों को भी बनाकर
आर्ष साहित्य के प्रचार–प्रसार में सहायक बनें।
पिछले साठ वर्षों से निरन्तर प्रकाशित
प्रमुख आर्य विचारकों, विद्वानों एवं सन्यासियों
के सारगर्भित लेख,
विशिष्ट अवसरों पर छोटे–बड़े विशेषांक, प्रकाशित,
वैदिक विचारधारा के प्रचारार्थ
लागत से भी कम मूल्य पर,
आर्य साहित्य की सबसे सस्ती एकमात्र पत्रिका
जिसका वार्षिक शुल्क रु.30.00,
पाँच वर्ष का रु.150.00 तथा
आजीवन: रु.400.00

वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

वेद प्रकाश

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

मासिक पत्र मूल्यः ५ रुपये अगस्त २०१३

कुल पृष्ठ संख्या २०

अन्तःपथ

स्वामी दर्शनानन्द जी के लुधियाना जनपद के आर्य संन्यासी (प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु)	३ से ६
योगेश्वर श्रीकृष्ण (पं. चमूपति)	६ से १९

चरैवेति-चरैवेति

जिन्दगी में हमेशा उड़ने की कोशिश कीजिए, उड़ नहीं सकते तो दौड़ने की कोशिश कीजिए, दौड़ नहीं सकते तो चलने की कोशिश कीजिए, चल नहीं सकते तो खिसकने की कोशिश कीजिए, क्योंकि एक स्थान पर रहकर आप जिन्दगी में आगे नहीं जा सकते, यही जिन्दगी का सच है।

—अज्ञात

निमन्त्रण

स्वामी दर्शनानन्द निर्वाण शताब्दी वर्ष व्याख्यान

निःशुल्क गुरुकुल–शिक्षा प्रणाली के प्रवर्त्तक श्री स्वामी दर्शनानन्दजी एक व्यक्ति ही नहीं, वे एक संस्था थे। आपने अनेक विषयों पर अधिकारपूर्वक लिखा। आप लेखक से भी बढ़कर मिशनरी, तपस्वी, त्यागी व तड़प वाले समाजसेवी थे।

महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा ने यह शताब्दी पूरे भारत वर्ष में विभिन्न स्थानों पर मनाने की योजना तैयार की है। सभा ने ही समाजों को शताब्दी पर्व पर व्याख्यान देने के लिए अधिकारी विद्वान् उपलब्ध कराने कर निश्चय किया है।

इसी क्रम में दिल्ली में यह पहला व्याख्यान आर्यसमाज मयूर विहार–1 द्वारा आयोजित है। सभी धर्मप्रेमियों से उपस्थित होकर धर्मलाभ उठाने का अनुरोध है।

रविवार, दिनांक 11 अगस्त 2013, प्रातः 11 बजे से

स्थान : आर्यसमाज मयूर विहार–I

पॉकेट–IV, दिल्ली–91, दूरभाषः 22755916

व्याख्यान–प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु', अबोहर

(ढाई सौ खोजपूर्ण, रोचक व प्रेरणाप्रद पुस्तकों के प्रणेता)

विशिष्ट वक्ता–श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य, मेरठ

(लेखक, विचारक, पत्रकार, वैदिक प्रवक्ता)

दोपहर 1.30 बजे– ऋषि लंगर

ईष्ट मित्रों सहित आपकी उपस्थिति सादर प्रार्थनीय है।

स्वामी दर्शनानन्द के विशाल व्यक्तित्व व अनुकरणीय कृतित्व को जानिए इन दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों द्वारा जिनका लोकार्पण इस अवसर पर होगा।

1. स्वामी दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
2. स्वामी दर्शनानन्द जीवन चरित

प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ६३ अंक १ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, अगस्त, २०१३

सम्पा० अजयकुमार पूर्व सम्पादक : स्व० स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

शताब्दी लेखमाला

स्वामी दर्शनानन्द जी के लुधियाना जनपद के आर्य संन्यासी

–प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु, वेद सदन, अबोहर–152116

स्वामी जी महाराज की जन्म शताब्दी पर इस लेख में उनके जीवन के कुछ प्रेरक प्रसंग देकर उनके जनपद के कुछ यशस्वी कर्मठ आर्य साधुओं की थोड़ी चर्चा करना बहुत उपयोगी रहेगा।

ईश्वर विश्वासः–स्वामी जी के जीवनचरित में हमने उनके ईश्वर विश्वास के कई प्रेरक प्रसंग दिये हैं। पुराने आर्य विद्वान् लेखक पहले उनके ईश्वर विश्वास के कुछ प्रसंग (विशेष रूप से ज्वालापुर, महाविद्यालय के भण्डार में कुछ भी न होने की घटना) बहुत सुनाया करते थे। हमने श्री महाराज के जीवनचरित में उनके ईश्वर विश्वास की कई और घटनायें भी खोज–खोज कर दी हैं। हम चमत्कारों को तो मानते नहीं, परन्तु महापुरुषों के जीवन प्रसंग सृष्टि–नियम के विरुद्ध तो नहीं होते परन्तु, कुछ घटनायें ऐसी होती हैं जो बड़े से बड़े पैगम्बर के बड़े से बड़े चमत्कार को मात कर देती हैं। चमत्कार उनकी तुलना में तुच्छ से लगते हैं।

स्वामी जी कहीं पंजाब के उत्तर पश्चिम के दूरस्थ क्षेत्र में प्रचारार्थ गये। पूर्वी भारत के किसी नगर से वहीं सूचना पहुँची कि अविलम्ब शास्त्रार्थ के लिए पहुँचें। उनके साथ साहित्य की सँभाल करने वाला एक ब्रह्मचारी भी था। स्वामी जी ने सामान समेट कर ब्रह्मचारी को प्रस्थान के लिए तैयार रहने को कहा। जिस समाज में गये थे, वह साधन सम्पन्न नहीं था। जहाँ जाना था उस नगर का किराया भी वह समाज नहीं दे सकता था। सबने पूछा, "महाराज पहुँचेंगे कैसे?"

बिना टिकट यात्रा करने वाले बाबा वे थे नहीं। जो भी पूछता कि कैसे जा पायेंगे? आप यही उत्तर देते रहे कि प्रभु का काम है। हम तो तैयार बैठे हैं, परमात्मा सब व्यवस्था करेंगे। सब लोग महात्मा के ईश्वर-विश्वास का फल देखने को उत्सुक थे। थोड़ी देर में उसी ग्राम का एक भूपति आया। उसने कहा, "मैं कुछ ऋण देता हूँ। आप रुपये मुझे लौटा देना।"

आपने कहा, "हम साधु हैं। व्यापारी नहीं। यह प्रभु का काम है। वह जाने। हम इस शर्त पर आपसे किराया नहीं लेंगे।" और भी न जाने किस-किसने क्या कहा। समय बीत रहा था। ईश्वर की कृपा हुई। कुछ दूरी से एक भक्त पहुँचा। उसे पता चला कि महात्मा तो सामान लेकर चलने की तैयारी में हैं। उसने कहा, "महाराज! ये राशि लीजिये। मैंने आपके ट्रैक्ट आदि मँगवाये थे।"

ठीक समय पर वह भक्त आ गया। किराये भाड़े की समस्या सुलझ गई। प्रभु ने भक्त के मन में ऐसे समय में यह प्रेरणा कैसे की। यह है स्वामी दर्शनानन्द जी के ईश्वर विश्वास का चमत्कार। हमने 'आर्यवीरों का दर्शन' उर्दू पुस्तक से यह घटना उद्धृत की है। इसकी भूमिका श्री लाला लाजपत राय जी ने लिखी है।

बच्चे ही मिलने आयेः–स्वामी जी का विवाह पौराणिक परम्पराओं के अनुसार बहुत छोटी आयु में हुआ था। दो पुत्र भी जन्मे। स्वामी जी तो ऋषि-दर्शन करते ही आर्यसमाजी बन गये। परिवार वालों ने खोजते-खोजते इन्हें दीनानगर में पकड़ लिया। वहाँ यह बाजार में एक पादरी से शास्त्रार्थ कर रहे थे। यह महर्षि के बलिदान से थोड़ा समय बाद की घटना है। इनके चाचा इन्हीं की शर्तें मानकर इन्हें घर ले गये। तब इनके परिवार वालों को इनका अता-पता मेरी आरम्भिक कार्यस्थली कादियाँ आर्यसमाज के प्रथम कर्णधार लाला मलावामल जी ने दी थी। बहुत वृद्ध हो चुके ला० मलावामल जी ने मेरे विद्यार्थी काल में मुझे यह पूरा प्रसंग सुनाया था।

स्वामी जी फिर कृपाराम के रूप में धर्मप्रचार, शास्त्रार्थ तथा साहित्य सृजन आदि सब कार्यों में जुट गये फिर दूसरी बार संन्यास लिया। दो बार अपने गृह नगर के समाज के उत्सव पर सन् 1905 तथा 1909 में जगराँव गये। इनके पुत्र व परिवार इनके दर्शनार्थ आये। यह किसी के मोह बन्धन में पड़कर घर वालों से मिलने नहीं गये।

इनके पुत्र भी सक्रिय आर्यवीर निकलेः–स्वामी जी के दोनों पुत्र

श्री नरसिंह तथा श्री अमरनाथ भी बड़े उत्साही आर्यवीर थे। श्री स्वामी जी के साहित्य के प्रकाशक भी बने।

दिल्ली भी केन्द्र रहाः—कुछ वर्ष तक कृपाराम के रूप में भी दिल्ली भी स्वामी जी का केन्द्र रहा। यहाँ से एक पत्र भी निकाला। आपका प्रकाशन संस्थान अजय जी की दुकान से अधिक दूरी पर नहीं था। कई वर्ष पूर्व मैंने खोजा था।

स्वामी जी ने कई पत्र-पत्रिकायें विभिन्न नगरों से निकालीं। सत्यार्थप्रकाश के पश्चात् अधिकांश लोग पं. लेखराम जी का तथा स्वामी दर्शनानन्द जी का साहित्य पढ़कर ही आर्य बने।

पिता पुत्र एक-दूसरे के उलटः—आर्यसमाज के आरम्भिक काल में एक उच्च राज्याधिकारी मौलाना अब्दुल अजीज को कड़ा संघर्ष करके आर्यसमाज ने शुद्ध किया। यह मौलाना एक प्रतिष्ठित हिन्दू कुल से थे। जिस ऊँचे से ऊँचे पद पर कोई भारतीय पहुँच सकता था। अब्दुल अजीज उस पद पर आसीन थे। इनकी शुद्धि एक ऐतिहासिक घटना थी। इनको शुद्ध करने का श्रेय परोपकारिणी सभा तथा धर्मवीर पं. लेखराम जी को प्राप्त है। शुद्धि लाहौर में की गई। पोंगापंथी कड़ा विरोध कर रहे थे। बहिष्कार का मिज़ाईल भी छोड़ा गया। शुद्धि संस्कार के समय पं. रामप्रताप (स्वामी जी के पिता) तथा स्वामी जी दोनों लाहौर में थे। इनके पिता तो पौराणिकों के साथ थे और स्वामी जी निर्भय होकर उस संस्कार को सम्पन्न करवाने में योगदान कर रहे थे।

लुधियाना जिला के अन्य आर्य संन्यासीः—इस जनपद ने आर्यसमाज को कई बड़े-बड़े साधु दिये। स्वामी जी के एक सगे छोटे भाई स्वामी ब्रह्मानन्द जी भी एक माननीय आर्य संन्यासी थे। आप महाविद्यालय ज्वालापुर को ही केन्द्र बनाकर धर्म-सेवा करते रहे। सम्पन्न कुल से थे सो आर्यसमाज को इनके कारण भी परिवार ने बिन माँगे दान दिया। श्रद्धेय श्री आचार्य उदयवीर जी ने एक साक्षात्कार में हमें बताया था कि उन्होंने स्वामी ब्रह्मानन्द जी तथा स्वामी जी की माता के भी दर्शन किये थे।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराजः—आपका जन्म भी लुधियान जनपद में हुआ था। आप एक प्रतिष्ठित सिख जाट परिवार में जन्मे थे।

स्वामी व्रतानन्द जीः—गुरुकुल चित्तौड़ के संस्थापक स्वामी व्रतानन्द जी लुधियाना के विख्यात थापुर कुल में जन्मे थे। आपके पिता ला०

केदारनाथ आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के एक प्रमुख नेता थे।

स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजकः–आप सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी, राजनैतिक विचारक, साहित्यकार तथा हिन्दी के उन्नायक थे। आप स्वामी व्रतानन्द जी के सगे चाचा थे। मैंने इन तीनों महान् साधुओं के दर्शन किये। स्वामी सत्यदेव जी दृष्टि खोकर भी सक्रिय समाज सेवा करते रहे।

एक और संन्यासी

इसी क्षेत्र से श्रद्धाराम फिलौरी के उत्तराधिकारी साधु तुलसीदेव निकले। वह आर्यसमाजी तो नहीं थे परन्तु उनका मूर्त्तिपूजा में विश्वास नहीं था। साधु तुलसी देव ने स्वयं लिखा है कि मैंने लुधियाना में ऋषि के व्याख्यान सुने थे। साधु जी का जन्म कस्बा भदौड़ में हुआ था। स्वामी दर्शनानन्द जी के पिता भदौड़ (पटियाला) राज्य में भी सपरिवार रहे। मैंने स्वामी जी के जीवन की सामग्री की खोज में भदौड़ की यात्रा भी की थी। (शेष फिर)

योगेश्वर श्रीकृष्ण

–पं. चमूपति

सा विभूतिरनुभावसम्पदां भूयसी तव यदायतायति।
एतदूढगुरुभार! भारतं वर्षमद्य मम वर्तते वशे॥

शिशुपालवध १४.५

"हे भारी भार सँभाले (श्रीकृष्ण)! आपकी कृपा का यह कितना बड़ा चमत्कार है कि आज से (सारा) भारतवर्ष मेरे अधिकार में है!"

माघ कवि ने 'शिशुपालवध' में युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण को इन शब्दों में सम्बोधित कराया है–"भारी भार सँभाले!" यह विशेषण अर्थ-गर्भित है। युधिष्ठिर के साम्राज्य का भार वस्तुतः श्रीकृष्ण ही के कन्धों पर था। कवि ने इसी भाव को लक्ष्य में रखकर इस विशेषण का अत्यन्त भावपूर्ण प्रयोग किया है। परन्तु इस इंगित को समझा टीकाकार भी तो नहीं। उसने श्रीकृष्ण पर भारत के साम्राज्य का नहीं, "विश्वम्भरत्व" का भार लाद दिया है। कवि के सम्मुख युधिष्ठिर का "मंत्री", पाण्डव-साम्राज्य का "श्रेष्ठ पुरुष" श्रीकृष्ण था; टीकाकार की आँखों में विष्णु का अवतार साक्षात् परमेश्वर

विश्वम्भर श्रीकृष्ण। किस भाव का सामयिक औचित्य अधिक है, किस "भार" में, स्वाभाविक धन्यवाद के उद्‌गारों की दृष्टि से, अधिक समयोचित "गुरुता", अधिक प्रकरणोचित "गौरव" है, साहित्य के सहृदय मर्मज्ञ स्वयं समझें और आनन्द लें। कवि का कौशल "ऊढगुरुभार!" इस संक्षिप्त-से सम्बोधन में है। इस छः अक्षर की छोटी-सी पदावली में श्रीकृष्ण के जीवन का सारा सार आ गया है।

'महाभारत' की कथा पाण्डवों के संकटमय जन्म से आरम्भ होती है और उनके कण्टकाकीर्ण बालकाल तथा आपत्तियों से व्याप्त युवावस्था का वर्णन कर भारतीय कवियों की इस मर्यादा के अनुसार कि कवि की रचना सदा सुखान्त ही होनी चाहिए, सम्पूर्ण भारतवर्ष पर युधिष्ठिर के साम्राज्य की स्थापना के साथ समाप्त हो जाती है। 'महाभारत' की सुखान्त समाप्ति का अवसर युधिष्ठिर का अश्वमेध है। वास्तविक कहानी की यहीं इतिश्रीः हुई है।

युधिष्ठिर से पूर्व जरासन्ध भारत के एक बड़े भाग का सम्राट् था। उसके साम्राज्य का साधन था पाशविक बल। वह भारत में शासन की विभिन्नता को मिटाना चाहता था। घर-घर का अपना राज्य हो और इस राज्य की अपनी राज्यप्रणाली हो, यह उसे असह्य था। 18 भोजकुलों को उसने तहस-नहस कर दिया। यादवों के "संघ" को मिटाकर उसकी जगह कंस को मथुरा का एकराट् (monarch) बनाया। कई गण-राज्य (republics) नष्ट-भ्रष्ट कर दिये। इस प्रकार छियासी राजाओं को बन्दी बना लिया और घोषणा की कि बन्दी राजाओं की संख्या सौ हो जाने पर इन्हें महादेव की बलि चढ़ाया जाएगा।

श्रीकृष्ण शिक्षा समाप्त कर अभी पितृगृह में आए ही थे कि उनके दृष्टिगोचर यह स्थिति हुई। इस अल्पवयस्क अवस्था में उन्होंने अपने घर की फूट को किस बुद्धिमत्ता से मिटाया और कंस को मार तथा जरासंध की सेनाओं को बारम्बार पराजित कर किस दूरदर्शिता तथा कार्यकुशलता से संघ की फिर से स्थापना की, संसार के राजनैतिक इतिहास में यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा मनोरम घटना है।

मगध-साम्राज्य के दाँतों-तले अपनी मथुरा की राजधानी को सुरक्षित न समझकर श्रीकृष्ण ने वृष्णियों और अन्धकों के सत्रह कुल द्वारवती में जा बसाए और वहीं यादवसंघ की राजधानी स्थापित कर दी। इस प्रकार अपने घर की चिन्ता से मुक्त होकर श्रीकृष्ण ने अपने जीवन का लक्ष्य समूचे भारत को जरासंध के पंजे से छुड़ाना और उसे आर्य साम्राज्य या दूसरे शब्दों में आत्मनिर्णय के मौलिक सिद्धांत पर आश्रित भारतवर्ष के छोटे-बड़े एकराट्, बहुराट्, संघ, श्रेणी, सभी प्रकार के राज्यों के संगठन (commonwealth) की छत्र-छाया में लाना निश्चित किया। यही वह "गुरुभार" था जिसके "वहन" का बीड़ा श्रीकृष्ण ने उठाया। इस गुरुभार-कार्य के सफलतापूर्वक निबाह देने के कारण कवि ने श्रीकृष्ण को "उद्गुरुभार" कहा।

पाँचों पाण्डव श्रीकृष्ण के फुफेरे भाई थे। उनसे इनकी पहली भेंट वन में ही हुई। अर्जुन ने ब्राह्मण के वेष में द्रौपद्री का स्वयंवर जीता था। परास्त क्षत्रिय उपद्रव कर रहे थे। श्रीकृष्ण ने बीच में पड़कर झगड़े को शान्त किया। श्रीकृष्ण की आँखों में पाण्डवों की वीरता जँच गई और पाण्डवों को श्रीकृष्ण की अचूक नीति-निपुणता तथा आपत्ति में ठीक समय पर आड़े आने वाली सहायता का पूरा भरोसा हो गया।

धृतराष्ट्र से आधा राज्य पाने, इन्द्रस्थ में नई राजधानी बसाने, खाण्डव वन को जलाकर उस सारे प्रान्त को मनुष्यों के रहने योग्य बनाने इत्यादि सभी कार्यों में कृष्ण पाण्डवों के एकमात्र अगुआ, एकमात्र आधार थे। अर्जुन और सुभद्रा के विवाह ने हृदयों की इस गाँठ को और भी पक्का-नितान्त अटूट कर दिया। अनन्य मित्रों की यह जोड़ी कृष्ण-युगल अर्थात् "दो कृष्ण" कहलाने लगी।

युधिष्ठिर ने राजसूय की ठानी। जरासंध का वध बिना खून की एक भी अनावश्यक बूँद गिराए हो गया। इन सभी कार्यों में श्रीकृष्ण की अगाध नीति-निपुणता ने गज़ब के जौहर दिखलाए। अब क्या था! पाण्डवों ने भारत का दिग्विजय किया। दिग्-दिगन्तरों के राजा राजसूय में सम्मिलित हुए। आगे इन राज्यों की नामावली तथा चित्र

दिया गया है। समस्त भारत अफगानिस्तान तथा चीन के कुछ भाग समेत उसमें समाविष्ट है। युधिष्ठिर सम्राट् हो गए। कृष्ण की मन: कामना पूरी हुई।

कृष्ण यज्ञ में अर्घ्य के पात्र माने गए। उन्हें अपनी बलबुद्धि का भरोसा था। भीष्म ने अर्घ्यदान के लिए इनका प्रस्ताव करते हुए स्पष्ट कहा था कि उपस्थित राजाओं में कोई वीर्य में, विद्या में, किसी भी गुण में इनके जोड़ का नहीं। इस एक उक्ति ने राजाओं को आगबबूला कर दिया। कृष्ण राजा न थे, राज-निर्माता थे। ये संभवत: राजाओं की दिव्य सत्ता (Divinity of Kings) के सिद्धान्तों को नहीं मानते थे। इन्होंने कंस का वध स्वयं किया था और जरासंध को भीमसेन से मरवा दिया था। राजा लोगों में इनकी इस उच्छृङ्खलता के कारण असन्तोष था।

शिशुपाल ने इस असन्तोष का प्रकाश वहीं यज्ञ के अवसर पर ही खुले शब्दों में कर दिया। क्रोध का मारा वह शिष्टता की सभी सीमाओं का उल्लंघन कर गया, जिसका दण्ड कृष्ण ने उसे सुदर्शन-चक्र के एक घुमाव से हाथों-हाथ दे डाला। शिशुपाल, सुदर्शन के एक ही वार में खेत रहा।

यज्ञ हो गया; परन्तु राजाओं का विरोध चाहे उस समय के लिए दब गया हो, शान्त नहीं हुआ; उल्टा तीव्र हो उठा। दुर्योधन की पाण्डवों से पुरानी लाग थी। उसने असन्तुष्ट राजाओं से मिलकर षड्यन्त्र किया। एक सभा रची। उसमें पाण्डवों को निमन्त्रित कर युधिष्ठिर और शकुनि में जुए का मैच करवा दिया। युधिष्ठिर अपना साम्राज्य, अपने भाई, यहाँ तक कि अपनी धर्मपत्नी तक को हार गया। जुआ तो जाहिर का बहाना था। वास्तव में साम्राज्य उसी समय शकुनि के दाँव पर हारा जा चुका था जब श्रीकृष्ण को अर्घ्य-प्रदान हुआ था और शिशुपाल का वध किया गया था।

पाण्डव बारह वर्ष के लिए वनवास और एक वर्ष के लिए अज्ञातवास में चले गए। इससे पूर्व भी ये वनवास कर चुके थे। उस वनवास की समाप्ति द्रौपदी के विवाह पर हुई थी और उसका फल द्रुपद की मैत्री था। इस बार के वनवास का अन्त अभिमन्यु और

उत्तरा के विवाह में हुआ। इससे विराट्-ऐसा सम्पत्तिशाली राष्ट्र पाण्डवों की पीठ पर हो गया। कौरवों से राज्य लौटाने की मन्त्रणा वहीं मत्स्यराज विराट् की सभा ही में हुई।

कृष्ण चाहते थे, युद्ध न हो। यह जानते हुए भी कि दुर्योधन हठी है और उसके मन्त्री शकुनि, दु:शासन और कर्ण हैं जो उसे कभी सीधे रास्ते पर न आने देंगे, ये हस्तिनापुर गए और विदुर के मेहमान हुए। कोई यह न कहे कि कृष्ण ने शक्ति रहते हुए भी युद्ध नहीं टाला, इन्होंने संधि करा देने का पूरा प्रयत्न किया। समझाया-बुझाया, डराया-धमकाया।

इस सारे प्रयत्न का फल केवल यह हुआ कि दुर्योधन अन्तर्राष्ट्र-नीति के सभी नियमों पर पानी फेरकर उलटा उन्हें ही कैद करने के मनसूबे बाँधने लगा। इनकी नारायणी सेना का कुछ भाग कृतवर्मा की अध्यक्षता में हस्तिनापुर में विद्यमान था। कृतवर्मा दुर्योधन के पक्ष में था सही, परन्तु कृष्ण का पकड़ा जाना उसे भी कहाँ सह्य हो सकता था? सेना-समेत सभा के द्वार पर आ डटा। कृष्ण ने दूत के कर्तव्य का पालन किया। ये शान्त रहे। नहीं तो वहीं तलवार चल जाती। धृतराष्ट्र के सामने इन्होंने यह प्रस्ताव जरूर रखा कि दुर्योधन को उसकी चाण्डाल-चौकड़ी समेत पाण्डवों के हवाले कर दीजिये।

दुर्योधन कृष्ण के समझाए भी नहीं समझा। लड़ाई हुई। सारा भारतवर्ष कुछ इस तरफ, कुछ उस तरफ, युद्ध में प्रवृत्त हो गया। बहुत ख़ून-ख़राबा हुआ। सभी राजकुल तबाह हुए। शान्ति के होने पर युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। उसके लिए फिर दिग्विजय हुआ। इस दिग्विजय में रक्तपात न करने, विशेषतया राजाओं पर तलवार न चलाने का विशेष ध्यान रखा गया। राजसूय के अनुभव ने इस बार विजेताओं को पूरा सावधान कर दिया था। यहाँ तक कि यज्ञ के आरम्भ में श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को अर्जुन द्वारा संदेश दिया कि इस बार अर्घ्यदान का पचड़ा नहीं करना। श्रीकृष्ण की ओर से यह संदेश-वास्तव में यह उनका आदेश था-निर्ममता की पराकाष्ठा थी! अश्वमेध असफल राजसूय की सफल पुनरावृत्ति थी। श्रीकृष्ण

ने राजसूय में ब्राह्मणों के पाँव धोए थे और राजसभा में अर्घ्य लिया था। अश्वमेध में वे इस प्रकार के सभी कार्यों से तटस्थ रहे। यह थी उनकी अहंकार-शून्यता! गीता में कही पूर्ण अनासक्ति!!

'महाभारत' के युद्ध के 36 वर्ष पश्चात् तक श्रीकृष्ण जीवित रहे। उन्होंने भारत को जरासन्ध के अत्याचार-युक्त एकसत्तात्मक साम्राज्य (Empire) से निकालकर युधिष्ठिर के आत्मनिर्णयमूलक आर्यसाम्राज्य (Commonwealth) के सूत्र में संगठित किया। उन्होंने इस साम्राज्य को फलते-फूलते देखा। यही भुवन-भावन, हमारी दृष्टि में भारत-भावन श्रीकृष्ण की वह अद्भुत विभूति थी जिसके आगे युधिष्ठिर, या उसे अगुआ बनाकर समूचा भारत, नत-मस्तक हुआ और अब तक है। इसी हेतु कवि ने उन्हें "ऊढगुरुभार" कहा।

सञ्जय ने सच कहा था-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ ५२.६६

"जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धर अर्जुन है, वहाँ लक्ष्मी है, विजय है, अटूट नीति है। यह मेरी दृढ़ धारणा है।"

भीष्म शान्तिपर्व में कहते हैं-

सर्वे योगा राजधर्मेषु चोक्ताः॥ (शान्ति० ६२.३२)

"सभी योग राजधर्म में कहे हैं।"

कोष में भी कहा है-"**योगः संहननोपायध्यानसंगतियुक्तिषु।**" 'महाभारत में "योग" शब्द का प्रयोग नीति तथा उपाय के अर्थ में हुआ है। स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं-"**योगः कर्मसु कौशलम्।**" द्रोण ने कहा, युधिष्ठिर का निग्रह "योग" से होगा, अर्थात् उपाय से। भीष्म के शब्दों में सब योगों का एक योग राज-धर्म है। कृष्ण उसी के ईश्वर, उसी के पारंगत पण्डित, उसी की मूर्त प्रतिमा थे। वे इसी से "योगेश्वर" कहलाए। सचमुच एक साम्राज्य (Commonwealth) की स्थापना से बड़ा और कौन-सा योग हो सकता था? उसी योग का फल "श्रीः, विजय, विभूति, ध्रुवनीति" है। यह है संक्षेप में श्रीकृष्ण का सार्वजनीन जीवन, जिसे महाभारतकार ने श्रीकृष्ण का

योग कहा है।

श्रीकृष्ण के इसी सार्वजनीन जीवन का वर्णन ही 'महाभारत' में किया गया है। योगेश्वर कृष्ण के इस 'योग' का लेखक ने इस पुस्तक में सप्रमाण उल्लेख किया है। जन्म, विवाह, अपने कुल में स्थिति, वानप्रस्थ, देहान्त इत्यादि निजी जीवन की बातों पर भी 'महाभारत' में बिखरे संकेतों का संग्रह कर उनका विस्तार पुराण आदि की सहायता से किया गया है। 'महाभारत' श्रीकृष्ण की सबसे पहली जीवनी है। वह जिन विषयों में चुप है, उनके सम्बन्ध में भी दूसरे प्रकरणों में आए निर्देशों द्वारा मधुर प्रकाश डालती है। हमने 'महाभारत' के इन निर्देशों को प्रदीप बना पौराणिक वृत्तान्तों का मौलिक भाव समझने का प्रयत्न किया है। एक पृथक् अध्याय भी श्रीकृष्ण के पुराण कथित जीवन के अर्पण कर दिया है। पुराणों ने अधिक महत्त्व श्रीकृष्ण के जन्म तथा बालकाल को दिया है। इसे उन्होंने एक चमत्कारपूर्ण अलौकिक घटना बना दिया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वास्तविक महत्त्व तो महापुरुषों के सार्वजनिक जीवन का ही हो सकता है। बालकाल इस अद्‌भुत प्रौढ़ावस्था के अद्‌भुत चमत्कार के कारण स्वयं चमक उठा सकता है। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की कहावत किसी के 'होनहार' सिद्ध होने पर चरितार्थ की जाती है। श्रीकृष्ण के सार्वजनिक जीवन की छटा मानव है, बालकाल की दिव्य। ऐसा होना स्वाभाविक था।

प्रो० भाण्डारकर की इस कल्पना से कि श्रीकृष्ण का वास्तविक नाम वासुदेव था, कृष्ण उनके गोत्र का नाम था, अनके पिता के लिए वसुदेव तथा उनकी माता के लिए देवकी नाम पीछे से गढ़ लिया गया, हम सहमत नहीं हो सके। पार्जिटर महाशय ने पौराणिक वंशावलियों का ऐतिहासिक महत्त्व बड़ी योग्यता से प्रमाणित किया है। उनकी सम्मति में ये वंशावलियाँ कृत्रिम नहीं हैं। यही हमारा मत है। वसुदेव का नाम पुराणों में आई प्रत्येक वंशावली में आया है। 'महाभारत' में स्वयं वसुदेव के सम्बन्ध में कई स्वतंत्र उल्लेख हैं और वहाँ उनका नाम वसुदेव ही है। हमारे मत में कृष्ण वसुदेव के पुत्र थे, इसीलिए वे वासुदेव कहलाए। आगे चलकर वासुदेव मानो

उनका निज नाम हो गया। उसकी स्वतन्त्र व्युत्पत्तियाँ होने लगीं। इसी से पीछे के साहित्य में इस नाम का अधिक उपयोग भी पाया जाता है।

श्रीकृष्ण संसार के सामने उस समय आते हैं जब वे अपने कुल की आन्तरिक फूट को मिटाकर कंस का वध करते हैं। उस समय उनकी आयु इतनी अवश्य होगी कि आहुक और अक्रूर जैसे प्रौढ़ पुरुषों को विवाह के नाते आपस में एकीभूत कर दें। इससे पूर्व वे क्या करते थे? हमारे विचार में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। यही कल्पना कलकत्ता यूनिवर्सिटी के इतिहासाध्यापक श्रीयुत हेमचन्द्र राय चौधरी एम०ए० की है। छान्दोग्योपनिषद् में एक कृष्ण देवकीपुत्र का वर्णन है। उसने घोर आंगिरस से उपदेश लिया था। चौधरी महाशय उस उपदेश की तुलना गीता के केन्द्रीभूत उपदेश से कर कहते हैं, ये वही यादव कृष्ण हैं। इनके गुरु घोर आंगिरस नाम के ऋषि थे। शतपथ में एक स्थान पर नक्षत्रों की एक विशेष स्थिति का उल्लेख है।

ज्योतिष-शास्त्र की गणनाओं से इस स्थिति का काल वही निश्चित होता है जो अन्य साधनों से 'महाभारत' का। शतपथ और छान्दोग्य तो समकालीन माने ही जाते हैं। इससे उक्त कल्पना को और पुष्टि मिलती है। परन्तु 'महाभारत' में घोर आंगिरस का नाम कहीं नहीं आया। हो सकता है उपनिषत्कथित कृष्ण और हों और 'महाभारत' के कर्णधार कृष्ण और। तो भी श्रीकृष्ण की यह आयु शिक्षोपार्जन में बीती होगी, इतना अनुमान दुरूह नहीं।

शिक्षाकाल वृन्दावन के आसपास ही बीता होगा और वृषसुर, हयासुर (पागल बैल तथा जंगली घोड़े) का वध उसी प्रांत में किया गया होगा। गोवर्धनधारण की काव्यमयी घटना—जो गोवर्धन पर्वत पर गोपों की बस्ती बसाने और सप्ताह-भर रात-दिन जागकर उसे बाढ़ में, बरसात में, मानो अपनी हथेली पर थामे रहने का कवितापूर्ण वृत्तांत है—वहीं घटी होगी।

रुक्मिणी से विवाह द्वारवती में जा बसने के पश्चात् हुआ है। भोजकट के निकट आकर रुक्मिणी का भाई रुक्मी इस विवाह में सहमत हो गया है, अतः इसे "राक्षस विवाह" नहीं कह सकते।

विवाह के पश्चात् पति-पत्नी का पुत्र की प्राप्ति के लिए बारह वर्ष ब्रह्मचर्य-पूर्वक हिमालय के दामन में तपस्या करना गार्हस्थ जीवन का आदर्श संयम है।

यादव-राष्ट्र में पहले तो शाल्वराज के आक्रमण के समय और अन्त में साधारण रूप में राजाज्ञा द्वारा मदिरापान का निषेध श्रीकृष्ण के नैतिक ध्येयों का उज्ज्वल प्रमाण है। श्रीकृष्ण मदिरापान के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने इसके लिए प्राणदण्ड निश्चित किया।

'महाभारत' के युद्ध की कुछ घटनाओं के सम्बन्ध में कहा जाता है कि इनमें श्रीकृष्ण ने कूट-अनार्य-नीति का प्रयोग किया। उदाहरणतया शिखण्डी को आगे कर अर्जुन से उसकी ओट में भीष्म को मरवा दिया। हमने 'महाभारत' के प्रमाणों से इस घटना पर विस्तृत विवेचन किया है। शिखण्डी वीर था, उसकी गणना पाण्डवपक्ष के महारथियों में स्वयं भीष्म ने की है। भीष्म का वध उसी ने किया था। भीष्म उसके वार का प्रतिकार करने में समर्थ हो गए। कारण कि अर्जुन जो शिखण्डी की सहायता कर रहा था, अपनी धनुर्विद्या की अद्‌भुत कुशलता से उनके प्रत्येक धनुष को, ज्योंही वे उसे हाथ में लेते और उस पर चिल्ला चढ़ाते, चटपट तोड़ देता था। भीष्म ने अर्जुन की इसी चतुराई को ध्यान में रखकर कहा था कि मैं शिखण्डी के तीरों से नहीं मरा, ये तीर वास्तव में अर्जुन के हैं। यह प्रशंसा लाक्षणिक थी। भीष्म ने अर्जुन पर शक्ति का वार किया। अत: वह ओट में तो था ही नहीं। सहायता भीष्म की भी और कौरववीर कर रहे थे। ऐसा करना उस समय की लड़ाई में विहित था।

द्रोण, कर्ण तथा दुर्योधन की मृत्यु का स्पष्टीकरण भी 'महाभारत' ही के श्लोकों से तत्तत् प्रकरण में कर दिया गया है। इन प्रसंगों में श्रीकृष्ण का दोष है या नहीं? पाठक स्वयं निर्णय करें। वे अहिंसा और सत्य के पूरे पक्षपाती थे। क्या उनका जीवन भी इन गुणों के साँचे में ढला हुआ था। इसका निश्चय घटनाओं के गंभीर अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता है।

श्रीकृष्ण के शील का पता इस बात से लगता है कि व्यास, धृतराष्ट्र, कुन्ती तथा युधिष्ठिर आदि बड़ों से वे जब भी मिले हैं, सदा

उनके चरणों को छूते रहे हैं। धृतराष्ट्र को नमस्ते कहते हैं। महाभारत-काल में "नमस्ते" शब्द का प्रयोग अभिवादन के समय अन्यत्र भी किया गया है।

संध्या और हवन के श्रीकृष्ण पूरे निष्ठावान् थे। दूतकर्म पर जाते हुए रास्ते में साँझ हो गई। वे संध्या के लिए रुक गए। हस्तिनापुर में प्रात:काल सभा में जाने से पहले संध्या तथा अग्निहोत्र से निवृत्त हुए हैं। अभिमन्यु के वध के दिन सायंकाल अपने शिविर में जाने से पूर्व कृष्ण और अर्जुन दोनों ने संध्या की है। युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र की दिनचर्या में भी संध्या और हवन का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। इससे उस समय की धार्मिक निष्ठा पर उज्ज्वल प्रकाश पड़ता है।

माता-पिता के प्रेम की अवस्था यह है कि युधिष्ठिर के पास रहते हुए जब भी घर जाने की इच्छा हुई है, हमेशा यात्रा का यही हेतु बताया है कि पितृपादों के दर्शन करने हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के चरित्र में निजी तथा सार्वजनिक जीवन के आदर्श उत्कर्षों का एक अद्‌भुत समन्वय पाया जाता है। देश की चिन्ता में कुल के हित को भी हाथ से नहीं जाने देते, और कुल के हित का सर्वोच्च साधन वैयक्तिक पवित्रता को समझते हैं। महाभारत का युद्ध ठन गया। पाण्डवों के कर्णधार श्रीकृष्ण थे। उधर यादवों की सहानुभूति दोनों पक्षों में बँट गई। बलराम ने बल दिया कि दुर्योधन की सहायता करो। कृतवर्मा आदि स्पष्ट उस ओर हो ही गए। इस समय श्रीकृष्ण की नीति-निपुणता काम आई। वे अर्जुन के सारथि हो गए। इससे पाण्डवों के अग्रणी बने रहे। परन्तु फिर उन्होंने निशशस्त्र होने की प्रतिज्ञा कर ली। इससे अपनों पर हाथ उठाने का अवसर भी न आने दिया। सेना कुछ कृतवर्मा के साथ दुर्योधन की ओर हो गई, कुछ चेकितान और सात्यकि के साथ पाण्डवों की ओर। दुर्योधन और अर्जुन के सिरहाने-पैताने आ बैठने की बात निरा बच्चों का बहलावा है। ऐसे महत्त्व के राजनैतिक प्रश्नों का निर्णय सिरहाने-पैताने की आकस्मिक काकतालियों से नहीं हुआ करता। इस ज़रा-से निर्णय में भी श्रीकृष्ण की अपूर्व बुद्धिमत्ता अपना पूर्ण प्रकाश दिखा रही थी।

इस नीति के पुतले, शील की प्रतिमा, सदाचार के अवतार, वेद

विद्या के सागर, आदर्श साम्राज्य-निर्माता, शूरशिरोमणि, भारतभावन श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द लिखते हैं–

"श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुणकर्मस्वभाव और चरित्र आप्तपुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त, बुरा काम, कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।"

(सत्यार्थप्रकाश १५वीं बार, ११ समु०, पृ० ३५६)

ऋषि के इस मार्मिक निर्देश से सबसे पूर्व क्रियात्मक रूप से लाभ उठाने का श्रेय श्री बंकिमचन्द्र चैटरजी को है। उन्होंने "कृष्णचरित्र" नामक पुस्तक लिखा। यह महाभारताश्रित श्रीकृष्ण की सबसे पहली जीवनी है। उसके पश्चात् कुछ छोटी-मोटी और भी पुस्तकें लिखी गई हैं, परन्तु वे बंकिम की कृति को नहीं पहुँचतीं। श्रीकृष्ण के जीवन-चरित्र की सामग्री के सम्बन्ध में श्री बंकिमचन्द्र ने एक नियम निर्धारित किया। उनका कहना है कि–

असल बात यह है कि जिन ग्रन्थों में निर्मूल अस्वाभाविक और अलौकिक बातें जितनी अधिक मिल गई हैं, वे उतने ही नए हैं। इसी नियम के अनुसार आलोचना करने योग्य जितने ग्रन्थ हैं, उनका क्रम इस प्रकार स्थिर होता है–

(१) महाभारत का पहला तह, (२) विष्णुपुराण का पाँचवाँ अंश, (३) हरिवंश, (४) श्रीमद्भागवत्।

यह क्रम दूसरे शब्दों में उनकी प्रामाणिकता है। बंकिम महाशय की कृति मुख्यतया श्रीकृष्ण पर लगाए गए दोषों का निराकरण है। इससे लेखक की वर्णन-शैली पर स्वभावत: एक बन्धन आ गया है। बंकिम बाबू का 'कृष्ण-चरित्र' में घटनाओं का स्वाभाविक चित्र-चित्रण इतना नहीं रहा, जितना प्रत्येक घटना के नैतिक औचित्य का पक्ष-पोषण हो गया है। सफाई के वकील की वक्तृता की तरह इसका रंग स्वाभाविक इतिहास का-सा नहीं रह सका। तो भी बंकिम बाबू का अनथक परिश्रम, उनकी सुन्दर सूझ, सहेतुक ऐतिहासिक गवेषणा, सुलझा हुआ स्पष्ट चरित्र-चित्रण कुछ ऐसे गुण हैं जो प्रत्येक पाठक को उनकी कृति पर मोहित कर लेते हैं। हमारा बंकिम बाबू से बहुत स्थानों पर मतभेद है। कई घटनाओं को उन्होंने

असम्भव समझा। कुछ और को प्रचलित परम्परा के अनुसार सत्य स्वीकार कर सहेतुक भी सिद्ध कर दिया है। परन्तु हमने कवि की वर्णन-शैली को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न स्थानों पर आए भिन्न-भिन्न वृत्तान्तों का समन्वय कर ऐसी कुछ घटनाओं का स्वरूप ही स्पष्ट और स्थिर किया है। कतिपय ऐसे मतभेद पाद-टिप्पणियों में दिखा दिये गए हैं।

इतिहास के विद्यार्थियों के लाभार्थ हमने जहाँ अपनी प्रत्येक उक्ति के लिए प्रमाण उपस्थित किये हैं, वहाँ युधिष्ठिर की राज्य प्रणाली तथा महाभारत के युद्ध प्रकार पर अलग-अलग अध्याय भी लिखे गये हैं। नगरों का जो चित्रण 'महाभारत' में आया है, बिन्दु विसर्ग-सहित ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर दिया है। तत्कालीन अभिवादन, पूजा, प्रतिष्ठा आदि शिष्टाचार का भी 'महाभारत' ही के शब्दों में उल्लेख किया है। युधिष्ठिर की सभा में लाए गए उपहारों का एक मोटा-सा विवरण भी दे दिया है। इससे महाभारत की सभ्यता का एक मूर्त चित्र आँखों के सामने आ जाता है। आए हुए राजाओं में उन जातियों के अतिरिक्त, जो स्पष्ट भारत की हैं, यवन, चीन, बर्बर, रोमक भी आए हैं। युद्ध में भी इन जातियों के सम्मिलित होने का उल्लेख है। चीनी तो सम्भवत: प्रागृज्योतिष् (असम) के राजा के साथ आए हों। उसकी फौजी में चीनी पाए जाते हैं। परन्तु बर्बर क्या अफ्रीका के थे और रोमक क्या रोम के? या यवन, बर्बर और रोमक भी भारत में आकर बस गए थे? यह प्रश्न अभी समाधान चाहता है।

अन्तिम अध्याय में हमने अन्य देशों के परम्परागत पौराणिक इतिहासों से कुछ ऐसे राजाओं की कथाएँ उद्धृत कर दी हैं, जो भारत के पुराण-कथित बाल-गोपाल की कथा से मिलती-जुलती हैं। इतिहास तथा पुराण के तुलनात्मक अध्ययन करने वालों के लिए ये कथाएँ विशेष रुचिकर होंगी।

गीता का उपदेश श्रीकृष्ण के जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। सच तो यह है कि वह अंग महत्ता में अपने अंगी से भी कहीं आगे बढ़ गया है। संसार के इतिहास में कृष्ण के जीवन का उतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना उनकी गीता का। इस पुस्तक में हमने "विश्व-रूप" की व्याख्या के नाते उसकी और केवल संकेत

मात्र ही किया है। परिशिष्ट आदि में कुछ लिख देना तो गीता की महत्ता का अनादर करना होता है। समय मिलने पर गीता के अर्पण एक स्वतंत्र ग्रन्थ किया जाएगा।

कृष्ण का जीवन किस नैतिक परिस्थिति में बीता, इसका ज्ञान 'महाभारत' के वृत्तान्त के नैतिक अनुशीलन से प्राप्त हो सकता है। वह एक कष्टसाध्य कार्य है। इसकी कुछ-कुछ झाँकी इस पुस्तक के पन्नों में भी मिलेगी ही। 'महाभारत' एक बड़े जटिल समाज का वर्णन करता है। उसमें विदुर जैसे शील के अवतार भी हैं जिनके सम्बन्ध में लिखा है कि इनके सदाचार ने संसार की इमारत को थामा हुआ है; भीष्म जैसे आत्मत्यागी, नीतितत्त्व के अथाह सागर भी हैं; और दुर्योधन जैसे हठी, मूर्त मत्सर तथा दु:शासन जैसे निर्लज्ज, शालीनता के शत्रु भी। सच तो यह है कि 'महाभारत' में सदाचार तथा दुराचार के भिन्न-भिन्न प्रकार के रंगबिरंगे के नमूने हैं। गंदी से गंदी बुराइयाँ और प्रशस्त से प्रशस्त भलाइयाँ 'महाभारत' में वर्णित हैं। कारण कि यह एक वास्तविक समाज का चित्र है-एक ऐसे समाज का जो सभ्य था, समुन्नत था, समृद्ध था। महाभारतकार की मानव समाज पर दृष्टि बड़ी गहरी, वास्तविकता की थाह तक पहुँचने वाली प्रतीत होती है। हम उसका विस्तृत उल्लेख न कर दो ऐसे संदर्भ पाठकों के सम्मुख रखेंगे जो तात्कालिक नैतिक आदर्शों के सार हैं। पहला आदर्श संशप्तकों की शपथों का है। ये त्रिगर्त के राजा थे। इन्होंने अर्जुन को मुख्य युद्ध से हटाकर एक गौण, पृथक् लड़ाई में जा जुटाया था। इस लड़ाई में प्रवृत्त होने से पूर्व इन्होंने कुछ शपथें खाईं। वे निम्नलिखित हैं-

"कवच पहिने, घी मले, कुश उठाए, मौर्वी की मेखला बाँधे, हजारों और लाखों का दान देते हुए प्रज्वलित अग्नि के सम्मुख वे यह प्रतिज्ञा करने को खड़े हुए-जो गति झूठों, ब्रह्मघातियों, मद्य पीनेवालों, गुरु-तल्पगामियों, ब्राह्मण का धन हरने वालों, राजा की चोरी करने वालों, याचक का हनन करने वालों, किसी के घर को आग लगा देनेवालों, गोघातकों, अपकारियों, ब्रह्मद्वेषियों, अपनी स्त्री को ऋतुकाल में मोह-वश वीर्यदान न देने वालों, श्राद्ध में मैथुन करने वालों, अमानत में खयानत करने वालों, पढ़ी विद्या का नाश

करने वालों, नपुंसक से लड़ने वालों, दीन के पीछे दौड़ने वालों, नास्तिकों, अग्नि और माता का त्याग करने वालों की होती है, हमारी हो, यदि हम अर्जुन को मारे बिना लौट आएँ या उसकी क्रूरता के डर से लड़ाई से विमुख हों।" (द्रोणपर्व अ० १८, श्लोक २२, २५-३४)

ये गतियाँ बुरी मानी जाती थीं। प्रत्येक सदाचारी वीर इन गतियों से बचता था। इसके विपरीत कुछ गतियाँ ऐसी थीं जो वीरों के लिए वांछनीय थीं। उनका परिगणन सुभद्रा के आशीर्वाद में है। हतपुत्रा सुभद्रा, अपने इकलौते पुत्र अभिमन्यु की मृत्यु से व्याकुल सुभद्रा, जब जमीन उसके पैरों-तले से निकल जाती है, आसमान कोई ठौर-ठिकाना देता दिखाई नहीं देता, उस समय की अशरण सुभद्रा कृष्ण के गले लगकर रोती है। कृष्ण उसे ढाढस बँधाते हैं। कहते हैं, "पिता की, पति की, पुत्र की और इन सबसे उतरकर भाई की वीरता को लांछित न कर! अभिमन्यु को वीरगति प्राप्त हुई है-वह गति जिसके लिए हम सब आकांक्षा कर रहे हैं।" सुभद्रा शोक करना वहीं छोड़ देती है। क्या उसे अभिमन्यु की सुगति का सन्देह था? आखिर माँ ही तो थी! अपने उठे हुए हाथों के सहारे के बिना पुत्र का इतने ऊँचे स्थान पर पहुँच जाना कैसे संभव समझती? यदि कोई कोर-कसर अभिमन्यु की वीरता में रही थी तो उसे सुभद्रा के उठे हाथों, अविरल आशीर्वाद ने पूरा कर दिया। कहती है-

यज्ञ करने वालों, दानशील, आत्मसिद्धि को प्राप्त हुए ब्राह्मणों, पुण्यतीर्थों का सेवन कर आए ब्रह्मचारियों, उपकार मानने वालों, यशस्वियों, गुरु की सेवा करने वालों, हजारों का दान देने वालों की जो गति होती है, हे मेरे लाल! वह गति तेरी हो।

युद्ध में पीठ न दिखाने वाले शूरों, शत्रु को मारकर मर जाने वाले वीरों की जो गति होती है, वह तेरी हो। यज्ञ में हजारों का दान करने वालों, अशरणों को यथेच्छ शरण प्रदान करने वालों, दीन ब्राह्मणों की सुध लेने वालों, अहिंसकों की जो गति होती है, हे मेरे लाल! वह गति तेरी हो।

उग्रव्रतधारी मुनि ब्रह्मचर्य से जिस गति को पहुँचते हैं, या एक

पत्नीव्रतों की जो शाश्वत गति होती है, चारों आश्रमों के पुण्य आचरणों से जो गति धार्मिक राजा की होती है, दीनों पर कृपा करनेवालों, सब पर सदा दया रखनेवालों, चुगली से बचे हुओं की जो गति होती है, हे मेरे लाल! वह गति तेरी हो।

व्रतियों, धर्मशीलों, गुरुपूजकों, अतिथि को खाली न लौटाने वालों की जो गति होती है, हे मेरे पुत्र! वह गति तेरी हो।

शोक की आग से जले हुए, आपत्ति के समय धैर्य धारण करने वालों की जो गति होती है, हे मेरे लाल! वह गति तेरी हो।

जो सदा अपने माता-पिता की सेवा करते हैं, और अपनी स्त्री में रत रहते हैं, जो ऋतुकाल में ही अपनी पत्नी के साथ सहवास करते हैं और परस्त्री का ध्यान तक नहीं करते, उन (संयमियों) की गति को, हे मेरे लाल! तू प्राप्त कर।

ईर्ष्या से बचे हुए, सब प्राणियों से दयापूर्वक व्यवहार करने वालों, किसी का हृदय न दुःखानेवालों, क्षमाशीलों की जो गति होती है, हे मेरे पुत्र! वह गति तेरी हो।

मांस, मद्य, दंभ, झूठ से बचे हुए अहिंसाशीलों की जो गति होती है, हे मेरे पुत्र! वह गति तेरी हो।

लज्जाशील, शास्त्रों के जानने वाले, जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ पुरुषों की जो गति होती है, हे सुभद्रा के लाल! वह गति तेरी हो। (द्रोणपर्व ७८, १९-३४)

यह अभिमन्यु के गुणों की स्मृति थी। जो स्मृति साधारणतया एक करुण विलाप का रूप धारण करती, श्रीकृष्ण की कालोचित चेतावनी से एक अमर आशीर्वाद बन गई। सुभद्रा के उस स्वाभाविक उद्‌गार ने उस समय की वीर माताओं के हृदयों की कामनाओं को एक आदर्श मंगलेच्छा के साँचे में ढालकर सदा के लिए सुरक्षित कर दिया है। यही आदर्श उस समय के नीतिमानों, समाज-संचालकों, नीति तत्त्व के उपदेशकों और आचार्यों का था। श्रीकृष्ण के चरित्र को इन्हीं आदर्शों की कसौटी पर परखना होगा। पाठक! परख! निष्पक्ष होकर परख! निर्दय होकर परख! सोना तेरे सम्मुख है, इसे जाँच! इसे आँक! खरा हो तो ले जा, नहीं तो सुवर्णकार को लौटा दे। आँकने से और नहीं, सोने का ज्ञान तो बढ़ ही जाएगा।

पुस्तक परिचय

भाषा का इतिहास **लेखक - स्व. प. भगवद्दत**

मूल्य 150.00 रु., पृष्ठ संख्या-281

भाषा से मानवता की पहचान है। भाषा परिवर्धित तथा परिष्कृत होती है। भाषा का उद्भव मानव के जन्म से ही होता है। मानव जिस देश, राष्ट्र में जन्म लेगा, उसकी भाषा वहीं के अनुकूल होगी। वह अपना कार्य उसी भाषा में चलाता है। भाषा की उत्पत्ति के लिए अनेक मत हैं, जो मुख्यत: १. परम्परागत मत, २. रहस्यवादी मत, ३. अर्द्धवैज्ञानिक मत, ४. मनोवैज्ञानिक मत हैं।

भाषा में चार प्रकार से परिवर्तन होता है-१. पदों की बनावट में परिवर्तन, २. पदों के अर्थों का भेद ३. शब्द भंडार में न्यूनाधिकता, ४. वाक्य रचना में परिवर्तन।

आज देश-विदेश में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं-इण्डो योरोपियन, ईरानी, हित्ती, ग्रीक, द्राविड़, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी आदि। केवल भारत में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में प्रान्तवार, प्रान्तीय भाषाएँ हैं। उनमें सर्वोपरि हिन्दी भाषा का प्रभुत्व है, जो सर्वग्राह्य है। बोलना, सुनना, लिखना आदि में कोई अन्तर नहीं किन्तु अन्य भाषा में यह चमत्कार नहीं। भाषा का इतिहास हमें भाषा की गहराई में ले जाता है, शब्द, वाक्य-रचना, मुहावरे, लोकोक्ति, शब्दों की विशिष्टता भाषा में सामञ्जस्य स्थापित करती है। हम बुद्धि व तर्क से कसौटी पर खरे उतरते हैं।

संस्कृत सर्वभाषाओं की जननी है। योगदर्शन व्यास के विभूतिपाद में १७ वें भाष्य सूत्र में शब्द, ज्ञान, अर्थ आदि को स्पष्टता से समझाया है "शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरूपज्ञानम्।" (योग. ३/१७) शब्द में अर्थ का, अर्थ में शब्द का, शब्द में ज्ञान का, ज्ञान में शब्द का, अर्थ में ज्ञान का और ज्ञान में अर्थ का अध्यास एकाकार करके लोक में व्यवहार होता है। विद्वान् लेखक ने भाषा की उत्पत्ति, वृद्धि व ह्रास, परिवर्तन, सादृश्य पद और उसका स्वरूप, अन्य भाषाओं को लेकर परिभाषाओं के साथ अपनी लेखनी से सरल रूप से समझाने का प्रयास किया है। लेखक ने सभी भाषाओं की उत्पत्ति, पद आदि की सुन्दर व्याख्या की है। भाषा का इतिहास विद्यार्थियों, शोधकर्त्ताओं, बुद्धिजीवियों के लिए मार्गद्रष्टा है। प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द ने इस अमूल्यकृति को पाठकों के लिए उपहार रूप दिया है, वे साधुवाद के पात्र हैं। पुस्तक का आद्योपान्त अध्ययन सार्थक एवं मर्मज्ञ के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

ईश्वरीय ज्ञान वेद

लेखक–प्रो. बालकृष्ण, एम.ए. सम्पादक–डॉ. वेदपाल

मूल्य 200.00 रुपये, पृष्ठ संख्या–320

वेद के विषय में कुछ विद्वानों को भ्रान्ति हुई कि वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं है। कारण रहा वेद के कुछ ऐसे स्थल, जिनमें अनित्य इतिहास प्रतीत होता है। वस्तुतः वेद में अनित्य इतिहास है ही नहीं, नित्य इतिहास अवश्य है। आदि सृष्टि से महाभारत पर्यन्त वेद के सार्वभौम ज्ञान को सभी मनुष्य ईश्वरीय ज्ञान मानकर चलते थे। महाभारत के पश्चात् कालान्तर में वेद के विषय में भ्रान्तियाँ हुईं वेद ईश्वरीय ज्ञान है या नहीं? वेद का काल आदि सृष्टि रहा या कुछ सहस्त्र पूर्व का काल रहा? वेद किन ग्रन्थों का नाम है? वेद नित्य है या अनित्य? आदि-आदि। इन सभी भ्रान्तियों का निवारण महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में बड़ी ही युक्ति से किया है। सत्यार्थप्रकाश में प्रश्न उठाया कि 'वेद ईश्वरकृत है अन्य कृत नहीं इसमें क्या प्रमाण है'? इसका उत्तर महर्षि देते हैं 'जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्धगुण कर्म स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है, वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत अन्य नहीं और जिसमें सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार के विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिक्रम रखा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टि कार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होने, वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अविरुद्ध, शुद्धात्मा के स्वभाव के विरुद्ध न हो, इस प्रकार के वेद हैं (स. प्र. ७)! लगता है इन्हीं भावों को लेकर प्रो. बालकृष्ण एम.ए. ने "ईश्वरीय ज्ञान वेद" पुस्तक लिखी। लेखक अपने समय के उच्च कोटि के विद्वान् रहे हैं, इतना होते हुए भी लेखक स्वयं वेद के विषय में भ्रान्त थे। वे लिखते हैं–'आज से तीन वर्ष पूर्व वेदभाष्यों के पाठ से मेरा मन भ्रमों, शंकाओं और सन्देहों का घर बना हुआ था। सन्देह कैसे दूर हुए, लेखक ने लिखा 'तीन वर्षों में कोई 400 ग्रन्थ पढ़े। निदान मेरी संदिग्ध, अशान्त, भ्रान्त आत्मा को अचिन्त्य सन्तोष मिला। उन भावों को मैंने पुस्तकाकार कर दिया है।

पुस्तक 'ईश्वरीय ज्ञान वेद' 400 ग्रन्थों का सार है। इस पुस्तक को दो भागों में बाँटा है। प्रथम भाग में लेखक ने आठ विषय रखे हैं–१. ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता, २. ईश्वरीय ज्ञान की परीक्षाएँ ३. वेदों में अनित्य

इतिहास का अभाव, ४. वैदिक ऋषि कौन थे, ५. वेद और यूरोपियन, ६. वेदार्थ, ७. वेदचतुष्टय का शाखा भेद, ८. वेदों के मन्त्र क्रम की नित्यता। ये विषय लेखक ने बड़े ही युक्ति-तर्क और खोजपूर्वक लिखे हैं। ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता के विषय में लिखते हैं– "पहली शताब्दी से पूर्व ही हमारे सैकड़ों जहाज लंका, चीन, जापान, फारस, मिस्र, अमरीका में जाते थे। हमारे शिल्प के सामान सारी रोमन दुनिया में प्रयुक्त होते थे। हम ही थे जो ऐसी मलमल बनाते थे, जिनका एक थान एक छोटी-सी अँगूठी में से गुजर जाता था। अब पाठक आप ही विचार कीजिये कि एक ओर तो इलहाम को मानने वाले ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता पर युक्ति देते हैं कि उसके बिना मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता, दूसरी ओर हम देखते हैं कि ईसाई और मुसलमानी इलहाम से शताब्दियों पूर्व भारतीयों ने एक अद्भुत सभ्यता प्राप्त कर ली थी।.....अतः स्वयं सिद्ध है कि वेदों के अतिरिक्त अन्य कोई इलहाम नहीं और वेदों का ज्ञान ही पूर्ण है।"

पुस्तक का द्वितीय भाग ९ विषयों से युक्त है। १. वेदों की आन्तरिक्षिक साक्षी, २. ब्राह्मण ग्रन्थों की साक्षी, ३. परिशिष्ट-१ अथर्ववेद का विषय, ४. परिशिष्ट-२ पुरोहित अथर्ववेदी ही हो सकता है, ५. उपनिषदों में वेदों की महिमा, ६. दर्शनों के विचार, ७. स्मृति प्रमाण ८. विविध प्रमाण, ९. सर्वविद्यानिधान वेद। लेखक ने सभी विषयों को बड़े ही परिश्रमपूर्वक लिखा है। पुस्तक में लगभग २२९ ग्रन्थों के सन्दर्भ दिये हैं। इतने सारे ग्रन्थों के सन्दर्भों से युक्त पुस्तक का सम्पादन योग्य विद्वान् श्रौत और स्मृति ग्रन्थों में विशेष योग्यता रखने वाले डॉ. वेदपाल जी (मेरठ) ने किया है।

यह पुस्तक लगभग ९६ वर्ष पूर्व छपी थी, वर्तमान में अप्राप्य थी। इसका पुनः प्रकाशन आर्यसमाज के इतिहासज्ञ प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु की प्रेरणा से श्री अजयकुमार ने गोविन्दराम हासानन्द प्रकाशन से किया। पुस्तक में जिज्ञासु जी ने प्रो. बालकृष्ण जी का जीवन परिचय भी दिया है। पुस्तक कहीं-कहीं सम्पादक की विशेष टिप्पणियों की अपेक्षा रखती है।

वेद के प्रति आस्था रखने वाले प्रत्येक पाठक के लिए यह पुस्तक पठनीय है। वेद के विषय में शोध करने वाले, शोधग्रन्थ व पत्र लिखने वालों के लिए बहुत लाभकारी है। इस पुस्तक को पढ़कर 'वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है अन्य मतवादियों के ग्रन्थ नहीं' ऐसा दृढ़ निश्चय पाठकों को होगा, ऐसा विश्वास है।

–सोमदेव, ऋषि उद्यान, अजमेर।
दूरभाष-९०२४६६९५५५

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर स्वाध्याय हेतु

आइए, इस बार जन्माष्टमी मनाते हुए श्रीकृष्ण का सच्चा स्वरूप जानें। गीता की शिक्षाओं को आत्मसात् करें तथा श्रीकृष्ण के जीवन से प्रेरणा लें। निम्न पुस्तकों को पढ़ें तथा प्रियजनों को इस अवसर पर उपहार स्वरूप दें।

1. योगिराज श्रीकृष्ण	लाला लाजपतराय	100.00
2. भगवान् श्रीकृष्ण और गीता उपदेश	स्वामी जगदीश्वरानन्द	15.00
3. श्रीमद्भगवद्गीता	स्वामी समर्पणानन्द	95.00
4. योगेश्वर श्रीकृष्ण	पं० चमूपति एम०ए०	95.00
5. श्रीमद्भगवद्गीता 1001 प्रश्नोत्तर	आचार्य भगवानदेव	150.00
6. श्रीकृष्णचरित	डॉ० भवानीलाल भारतीय	125.00
7. महापुरुषों के जीवन से सीखें	आचार्य अभिमन्यु	25.00
8. श्रीमद्भगवद्गीता	डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	210.00
9. श्रीमद्भगवद्गीता –एक अध्ययन	श्री गुरुदत्त	130.00
10.महाभारत	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	750.00
11.वसुदेव	नरेन्द्र कोहली	225.00
12.श्रीमद्भगवद्गीता (3 भागों में)	भूपेन्द्रनाथ सान्याल	500.00
13.भगवद्गीता	डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	250.00
14.मेरा अन्तिम आश्रय–श्रीमद्भगवद्गीता	भाई परमानन्द	200.00
15.श्रीकृष्ण का महान् व्यक्तित्व	प्रो० रामविचार	10.00
16.मर्यादापुरुषोत्तम राम का महान व्यक्तित्व	प्रो० रामविचार	10.00
17.श्रीमद्भगवद्गीता	श्री लोकमान्य तिलक	400.00
18.श्रीमद्भगवद्गीता	श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	1200.00
19.शान्तिदूत श्रीकृष्ण	स्वामी विद्यानन्द	250.00
20.द्रौपदी का चीरहरण और श्रीकृष्ण	स्वामी विद्यानन्द	75.00
21.कृष्ण की आत्मकथा (8 भागों में)	श्री मनु शर्मा	2400.00

प्राप्ति स्थानः विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

4408, नई सड़क, दिल्ली–6, दूरभाष 23977216, 65360255

Email: ajayarya16@gmail.com Web: www.vedicbooks.com

श्रावणी पर्व

वैदिक धर्म में स्वाध्याय की सर्वोपरि प्रधानता और महिमा बार–बार वर्णन की गई है। श्रावणी मनाने का एक उत्तम तरीका यह है कि वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय इस पर्व से अवश्य प्रारम्भ किया जाए। निम्नलिखित छोटी–बड़ी पुस्तकों से आप प्रेरणा लेकर इस प्रवृति को बढ़ा सकते हैं:–

वैदिक सूक्ति सरोवर	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	20.00
कुछ करो कुछ बनो	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	30.00
सामवेद शतकम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	18.00
ऋग्वेद शतकम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	18.00
यजुर्वेद शतकम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	18.00
अथर्ववेद शतकम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	18.00
वेद सौरभ	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	25.00
वैदिक उदात्त भावनाएँ	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	25.00
वेद मंजरी	पं. रामनाथ वेदालंकार	125.00
स्वाध्याय सर्वस्व	स्वामी दीक्षानन्द	30.00
वैदिक दर्शन	पं. चमूपति एम.ए.	30.00
श्रुति सौरभ	पं० शिवकुमार शास्त्री	150.00
सत्योपदेशमाला	स्वामी सत्यानन्द	125.00
वैदिक विनय	आ० अभयदेव विद्यालंकार	250.00
ब्राह्मण की गौ	आ० अभयदेव विद्यालंकार	175.00
वैदिक उपदेशमाला	आ० अभयदेव विद्यालंकार	20.00
वैदिक सम्पत्ति	पं० रघुनन्दन शर्मा	400.00
स्वाध्याय सन्दीप	स्वामी वेदानन्द तीर्थ	300.00
स्वाध्याय सन्दोह	स्वामी वेदानन्द तीर्थ	250.00
वैदिक सम्पदा	पं० वीरसेन वेदश्रमी	300.00
ऋग्वेद एक सरल परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	35.00
यजुर्वेद एक सरल परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	35.00
सामवेद एक सरल परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	35.00
अथर्ववेद एक सरल परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	35.00
ईश्वरीय ज्ञान वेद	प्रो० बालकृष्ण एम.ए.	200.00
स्वामी दयानन्द का वैदिक दर्शन	स्वामी सत्यप्रकाश	225.00
वैदिक चिन्तन धारा	डॉ० सुन्दरलाल कथुरिया	40.00
मत मतान्तरों का मूलस्रोत–वेद	पं० लक्ष्मण जी आर्योपदेशक	80.00
वेद प्रवचन	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	160.00
वेद मनीषा के अनमोल रत्न	महात्मा गोपाल स्वामी	65.00
वेदों की वाणी सन्तों की जुबानी	श्री मदन रहेजा	80.00

प्राप्ति स्थानः विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

4408, नई सड़क, दिल्ली–6, दूरभाष 23977216, 65360255

Email: ajayarya16@gmail.com Web: www.vedicbooks.com

आगामी विशेषांक

'वेदप्रकाश' का अक्टूबर 2013 का अंक विशेषांक होगा। इसमें प्रस्तुत है प्रसिद्ध संन्यासी पूज्यपाद स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी महाराज का महत्त्वपूर्ण लेखः–

पराविद्या के पाँच अध्याय

मुण्डक उपनिषद् के प्रथम खण्डों में ही यह उल्लेख है कि ब्रह्मवेत्ताओं की यह मान्यता है कि विद्यायें दो प्रकार की होती हैं:–(1) पराविद्या और अपराविद्या–"द्वे विद्ये–परा चैवापरा च।" (1।4)। अपरा विद्या के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, अर्थात् समस्त वेद और वेदांग आते हैं– किन्तु पराविद्या इनसे भिन्न है। यह वह विद्या है जिसके माध्यम से अक्षर ब्रह्म, अथवा अविनाशी आत्मा को जाना जाता है।

सूक्ष्म जगत् अध्यात्मविद्या के अध्ययन का विशेष विषय है। इस अध्ययन के पाँच अध्याय हैं:–

1. इन्द्रियाँ
2. प्राण
3. मानसतंत्र
4. जीव
5. परमात्मा

कोई भी ज्ञानी, मुमुक्षु, जिज्ञासु या अध्येता इन पाँचों के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकता। ये पाँचों अमूर्त्त और निराकार हैं, किसी ने भी इनको देखा नहीं, इन्हें नापा–तौला नहीं, इनका चित्र नहीं खींचा, कभी ये पकड़ में नहीं आये। भौतिक विज्ञान, रसायन या गणित का कोई भी नियम, सूत्र प्रतीक, समीकरण इन पर लागू नहीं है। ये पाँचों एकतन्त्र में ग्रंथित हैं और उपनिषदें इसका वर्णन करके ही गौरवान्वित हुई हैं।

पराविद्या के गूढ़ रहस्यों को लेखक ने अत्यन्त सरल व रोचक शैली में प्रस्तुत किया है, पाठकों को निश्चित ही आनन्द की अनुभूति होगी।

वेदप्रकाश के जिन सदस्यों का शुल्क हमें 30 सितम्बर तक प्राप्त हो जाएगा, उन्हें यह विशेषांक अवश्य प्राप्त होगा।

निमन्त्रण

स्वामी दर्शनानन्द निर्वाण शताब्दी वर्ष व्याख्यान

निःशुल्क गुरुकुल–शिक्षा प्रणाली के प्रवर्त्तक श्री स्वामी दर्शनानन्दजी एक व्यक्ति ही नहीं, वे एक संस्था थे। आपने अनेक विषयों पर अधिकारपूर्वक लिखा। आप लेखक से भी बढ़कर मिशनरी, तपस्वी, त्यागी व तड़प वाले समाजसेवी थे।

महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा ने यह शताब्दी पूरे भारत वर्ष में विभिन्न स्थानों पर मनाने की योजना तैयार की है। सभा ने ही समाजों को शताब्दी पर्व पर व्याख्यान देने के लिए अधिकारी विद्वान् उपलब्ध कराने कर निश्चय किया है।

इसी क्रम में दिल्ली में यह पहला व्याख्यान आर्यसमाज मयूर विहार–1 द्वारा आयोजित है। सभी धर्मप्रेमियों से उपस्थित होकर धर्मलाभ उठाने का अनुरोध है।

रविवार, दिनांक 11 अगस्त 2013, प्रातः 11 बजे से

स्थान : आर्यसमाज मयूर विहार–I

पॉकेट–IV, दिल्ली–91, दूरभाषः 22755916

व्याख्यान–प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु', अबोहर

(ढाई सौ खोजपूर्ण, रोचक व प्रेरणाप्रद पुस्तकों के प्रणेता)

विशिष्ट वक्ता–श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य, मेरठ

(लेखक, विचारक, पत्रकार, वैदिक प्रवक्ता)

दोपहर 1.30 बजे– ऋषि लंगर

ईष्ट मित्रों सहित आपकी उपस्थिति सादर प्रार्थनीय है।

स्वामी दर्शनानन्द के विशाल व्यक्तित्व व अनुकरणीय कृतित्व को जानिए इन दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों द्वारा जिनका लोकार्पण इस अवसर पर होगा।

1. स्वामी दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
2. स्वामी दर्शनानन्द जीवन चरित

प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली

पुनः प्रकाशित पुस्तकें

श्रीमद्दयानन्द–प्रकाश लेखकःस्वामी सत्यानन्द मूल्य रु. 110.00

पांच वर्ष तक ऋषि जीवन की विशेष सामग्री एकत्र करने के प्रयोजन से लेखक ने विशेष पर्यटन किया है। महर्षि के जीवन की कई महत्वपूर्ण छोटी–बड़ी घटनाओं तथा महर्षिजी विषयक कई उत्तम–उत्तम वाक्यों को संग्रहित किया गया है। यह लेखक का अत्यन्त रसभरा अपनी शैली का एक बेजोड़ ग्रन्थ है। (विद्यार्थी संस्करण)

घर का वैद्य

फल–फूल, कन्द–मूल, पत्ता, बूटा–बूटा अपने आप में डिस्पेंसरी है–वैद्य भी, दवा भी, दवाखाना भी। जब प्रकृति की अनमोल दवाईयाँ आपको उपलब्ध हैं तो कैप्सूल–पुड़िया की क्या जरुरत। 12 ऐसी पुस्तकों का सैट जिन्हें खरीदकर आप सारी दुनिया को बांटना चाहेंगे। मूल्य 20.00 प्रत्येक।

घर का वैद्य–फिटकरी
घर का वैद्य–तुलसी
घर का वैद्य–नींबू
घर का वैद्य–नीम
घर का वैद्य–हींग
घर का वैद्य–बरगद
घर का वैद्य–लहसुन
घर का वैद्य–आंवला
घर का वैद्य–अदरक
घर का वैद्य–हल्दी
घर का वैद्य–शहद
घर का वैद्य–दूध–घी

पाणिनीय प्रवेशिका लेखकःस्वामी समर्पणानन्द मूल्य रु. 20.00

लेखक ने इस पुस्तक की रचना इसी उद्देश्य से की है कि संस्कृत भाषा को सरलता से समझा जा सके। इस पुस्तक से विद्यार्थी शीघ्र ही पाणिनीय अष्टाध्यायी को समझने लगेगा, और सीधा उसे उपयोग में लाने लगेगा।

सामाजिक पद्धतियाँ लेखकःमहाशय मदनजित् आर्य मूल्य रु. 30.00

वैदिक सन्ध्या, हवन–मंत्र अर्थ सहित, साथ में यज्ञोपवीत धारण–मंत्र प्रथम वस्त्र–परिधान, जन्म–दिवस–पद्धति, विवाह–दिवस, वाग्दान एवं सगाई पद्धति, सेहराबन्दी, शैंत (चूडा), मिलनी, चुन्नी–चढ़ाना, व्यापार–सूत्र, दुकान–महूर्त, अन्त्येष्टि–क्रिया, दत्तकस्वीकरणविधि, घरेलू नुस्खे आदि आवश्यक सामाजिक पद्धतियों के संग्रह।

प्रार्थना पुस्तक लेखकःस्वामी अमृतानन्दजी मूल्य रु. 15.00

प्रभु के गुणों का चिन्तन करके उनको जीवन में ढालना ही वैदिक भक्ति है। इसी भक्ति को लक्ष्य में रखकर प्रार्थना करने से वह सार्थक हो सकती है। प्रभु भक्तों को सर्वदा इसे दृष्टि में रखना चाहिए। प्रत्येक दिन वेद मन्त्रों का स्वाध्याय करने हेतु 16 मन्त्रों की मनोहारी व्याख्या।

वेदप्रकाश

अगस्त २०१३ Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG)-11/8030/2012-14

आगामी प्रकाशन

स्वामी दर्शनानन्द जीवन चरित प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

यह वर्ष आर्य समाज के एक निर्माता, शास्त्रार्थ महारथी, कई गुरुकुलों के संस्थापक तथा देशधर्महित सब सुख वार देने वाले महान सन्यासी स्वामी दर्शनानन्द जी का निर्वाण शताब्दी वर्ष है।

लेखक ने इस जीवनी के लिए सामग्री की सघन खोज की है। अनेक पत्रिकाओं व पुस्तकों को खंगाला। प्रमाणों के अते-पते सब दिये हैं। जानकारी के जिन स्रोतों तक किसी की भी पहुंच नहीं, लेखक वह भी खोज लाये हैं।

स्वामी जी के इस जीवन चरित में लेखक ने अलभ्य स्रोतों के आधार पर कई उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में सफलता पाई है। स्वामी जी ने संन्यास कब लिया? कहाँ लिया? और किससे लिया? इन तीनों प्रश्नों का सप्रमाण उत्तर आपको इसी पुस्तक में मिलेगा।

पाठक इस पुस्तक पर विहंगम दृष्टि डालेंगे तो अनायास ही पुकार उठेंगे कि स्वामी जी के सम्बन्ध में इतनी जानकारी कहीं भी, किसी भी पुस्तक में उपलब्ध नहीं है।

ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी

डॉ. भवानीलाल भारतीय

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने ऐसे 50 व्यक्तियों के जीवनवृत्त तथा स्वामी दयानन्द से इनके पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना की है, जो भक्त, प्रशंसक तथा सत्संगी-इन तीन वर्गों में परिगणित किये जा सकते हैं।

भक्त से हमारा अभिप्राय उन लोगों से है जो स्वामी दयानन्द के महनीय व्यक्तित्व तथा उनकी लोकहित युक्त भावनाओं के प्रति प्रणतभाव रखते थे। यह आवश्यक नहीं कि ऐसे लोग पूर्णतया वैदिक विचारधारा के अनुयायी ही रहे हों।

प्रशंसकों की श्रेणी में वे लोग हैं जो पौराणिक विश्वासों के प्रति निष्ठा रखने वाले उस सनातनी वर्ग के नेता थे जिनसे स्वामी जी का दीर्घकाल पर्यन्त संघर्ष तथा प्रतिद्वन्द्विता चलती रही।

सत्संगी वर्ग में हम उन लोगों की गणना कर सकते हैं जो विचारों और आस्थाओं में स्वामी जी से कोसों दूर होते हुए भी स्वामी दयानन्द का सत्संग लाभ करना परम उपयोगी मानते थे और उन्हें देश एवं जाति का हित चिन्तक समझते थे।

प्रकाशक-अजयकुमार, मुद्रक-अजयकुमार, स्वामी-अजयकुमार, गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6, अजयकुमार द्वारा सम्पादित, प्रिंटर्स-अजय प्रिंटर्स, 1586/C-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 में प्रिंट करा, वेदप्रकाश कार्यालय, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6 से प्रसारित किया। न्यायक्षेत्र-दिल्ली।

For more details contact:
AJAY KUMAR ARYA
C/O Govindram Hasanand
(Publishers, Distributors and Exporters)
4408, Nai Sarak, Delhi-110006, India
Phone:91-11-23977216, 91-11-65360255
Tele-Fax: 91-11-23977216
Email:ajayarya16@gmail.com